विपश्यना

साधकों का मासिक प्रेरणा पत्र

बुद्धवर्ष २५४६, माघ पूर्णिमा, १६ फरवरी, २००३ वर्ष ३२ अंक ८

धम्मवाणी

स्वाक्खातो भगवता धम्मो सन्दिट्ठिको अकालिको एहिपस्सिको ओपनेय्यिको पच्चत्तं वेदितब्बो विञ्ञूही'ति।

-- दीघनिकाय २.७३ (महापरिनिब्बानसुत्त)

भगवान द्वारा भली प्रकार आख्यात किया गया यह धर्म, संदृष्टिक है काल्पनिक नहीं, प्रत्यक्ष है, तत्काल फलदायक है, आओ और देखो (कहलाने योग्य है), निर्वाण तक ले जाने योग्य है, प्रत्येक समझदार व्यक्ति के साक्षात करने योग्य है।

संयुक्त राष्ट्र महासभा द्वारा वैशाख महोत्सव २००२ को मान्यता

(विश्व विपश्यनाचार्य सत्यनारायण गोयन्का द्वारा संबंधित मूल विषय **'शांति के महान वैज्ञानिक : बुद्ध'** पर प्रमुख वक्ता के रूप में दिया गया प्रवचन)

प्रिय शांतिप्रेमी मित्रो और आदरणीय भिक्षुओ! मैं 'संयुक्त राष्ट्र' को तथा इस भव्य वैशाख महोत्सव के आयोजकों, विशेषकर म्यंमा तथा श्रीलंका के शिष्टमंडलों को धन्यवाद देता हूं, जिन्होंने मुझे इस अंतर्राष्ट्रीय सम्मान्य सभा को संबोधित करने का अवसर प्रदान किया।

दुनिया में जो हो रहा है उसे देख कर हृदय दुःख से भर जाता है। मनुष्य ही मनुष्य का दुश्मन हो गया है। यह व्यक्तिगत शत्रुता नहीं है -- लोग इसलिए मारे जा रहे हैं क्योंकि वे एक विशेष धार्मिक संप्रदाय या समुदाय के हैं, क्योंकि वे एक विशेष मानवजातीय समूह के हैं या विशेष देश के हैं। नृशंसता इस निम्न स्तर की है कि एक व्यक्ति दूसरे को तब भी मारता है जबकि वे निर्दोष होते हैं, असहाय औरत और बच्चे होते हैं। यह त्रासदिक हिंसा आधुनिक प्रौद्योगिकी के कारण अधिक भयानक रूप से विध्वंसकारी हो गयी है, जैसी कि पहले कभी नहीं थी। मानव इतिहास में संभवतः इसके पहले ऐसा कभी नहीं हुआ। अतः प्रतिकूल भावनाओं से उत्पन्न इन अमानवीय जघन्य अपराधों से मानवता की रक्षा के लिए आज मौलिक परिवर्तन की आवश्यकता है।

पूरा विश्व घृणा, चिंता और भय के रोग से आक्रांत है। इसे किसी असाधारण वैद्य से चिकित्सा की जरूरत है। बुद्ध ऐसे ही एक असाधारण भिषक थे, सुख और शांति के बहुत बड़े वैद्य। उनका शांति और मैत्री का संदेश आज भी उतना ही प्रासंगिक है जितना २६०० वर्ष पहले था जबकि उन्होंने धर्मचक्र का प्रवर्तन किया था। बल्कि, आज वह अधिक प्रासंगिक हो गया है। आज मध्याह्न काल में हम मानव इतिहास के इस विशिष्ट व्यक्ति के संदेश को सम्मान देने के लिए एकत्र हुए हैं। हम देखें कि उनकी शिक्षा ऐसे नृशंस विध्वंसात्मक मनोभावों को कैसे जड़ से उखाड़ फेंकती है और कैसे इनका रूपांतरण रचनात्मक करुणा में होता है। अधिकतर अंधभक्ति और अपनी दृष्टि के प्रति गहन आसक्ति ही ऐसे निषेधात्मक मनोभावों का कारण है जो क्रमशः इस प्रकार की नृशंसता को जन्म देती है।

जब मैंने विपश्यना का पहला शिविर अपनी मातृभूमि म्यंमा में किया तभी बुद्ध की वास्तविक शिक्षा को ठीक से समझ पाया। मुझे याद है कि शिविर प्रारंभ होने के पहले मेरे आचार्य ने मुझे एक पुस्तिका पढ़ने को दी थी। उसके पहले ही पृष्ठ पर कालामों को बुद्ध द्वारा दिये गये उपदेश का एक उद्धरण था। बुद्ध ने उन्हें कहा था -- "किसी बात को इसलिए मत स्वीकारो क्योंकि तुमने इसे बहुत बार सुना है, क्योंकि कई पीढ़ियों ने इस पर परंपरागत रूप से विश्वास किया है, क्योंकि यह बहुत लोगों (जनता) द्वारा मान्य है, क्योंकि यह तुम्हारे धर्मग्रंथों के अनुसार है, क्योंकि यह तर्कसंगत है, क्योंकि यह तुम्हारे विश्वास से मेल खाती है, क्योंकि यह तुम्हारे गुरु द्वारा उद्घोषित है जिनका व्यक्तित्व आकर्षक है और जिनके प्रति तुम्हें बड़ा आदर का भाव है या स्वयं मैं कहता हूं। नहीं, बल्कि उसे तभी स्वीकारो जबकि तुम स्वयं अपने अनुभव द्वारा साक्षात्कार कर लो और जान लो कि यह केवल तुम्हारे लिए ही नहीं, बल्कि सबके लिए हितकारक और लाभकारक है। तब इसे मात्र स्वीकारो ही नहीं बल्कि इसके अनुसार जीवन जीयो, इसे अपने आचरण में उतारो।"

उनके इस संदेश में एक चुम्बकीय आकर्षण था। मैं जिस परंपरा में जन्मा और पाला-पोसा गया था वह भिन्न थी। वहां मुझे यह सिखाया गया था कि हमारे धर्मग्रंथ में जो कुछ लिखा है और धर्मगुरु जो कहते हैं उसे बिना प्रश्न किये स्वीकारना चाहिए। ३१ वर्ष की उम्र में बुद्ध के जिन शब्दों से मेरा पहली बार संपर्क हुआ, वे ये ही शब्द थे जिन्हें पढ़ कर मैं गदगद हो गया।

मानव इतिहास में यह आत्म स्वातंत्र्य का पहला और अनोखा घोषणापत्र (सनद) था। मुझे यह बात बहुत स्पष्ट रूप से समझ में आ गयी कि सम्यक संबुद्ध की शिक्षा में विवेकशून्य विश्वास और अंधश्रद्धा को कोई स्थान नहीं है। मैंने खुले मन से अनुभव के आधार पर सत्य को स्वीकार करते हुए इसे आजमाने का निश्चय किया। जैसे-जैसे मैं धर्मपथ पर चला और जो मुझे हर दिन के अनुभव हुए, उससे मैंने यही जाना कि यह मार्ग बुद्धिसंगत, वैज्ञानिक और अत्यंत व्यावहारिक है। बिना विचारे स्वीकार करने की यहां कोई आवश्यकता नहीं है। इसमें कोई संदेह नहीं रहा कि मैं उन्हें ही सत्य मानूं जिन्हें मैंने स्वयं अनुभव किया है। मैंने यह भी पाया कि इस मार्ग पर उठाया गया हर कदम विश्वजनीन और असांप्रदायिक है। इससे मेरा आत्म विश्वास बहुत बढ़ा।

दस-दिवसीय शिविर के अंत में मैंने पाया कि बुद्ध की यह शिक्षा पूर्ण और सद्यःफलदायी है। यह शिविर मेरे लिए शारीरिक, मानसिक तथा आध्यात्मिक दृष्टि से बड़ा ही लाभदायक सिद्ध हुआ। अतः मैंने इसे पूरे मन से स्वीकार किया और उसके बाद से संबुद्ध द्वारा बताये इस मार्ग पर चलता रहा हूं।

डेढ़ दशक बाद मेरे आचार्य ने मुझे भारतवर्ष तथा पूरी दुनिया में विपश्यना सिखाने के लिए अधिकृत किया। इसके अभ्यास से भिन्न-भिन्न देशों के, भिन्न-भिन्न संप्रदाय के, भिन्न-भिन्न परंपरा के लाखों लोगों को एक जैसा लाभ प्राप्त हुआ है। सभी पेशे के लोग इस शिक्षा की ओर आकर्षित हुए हैं क्योंकि यह पूरी तरह असांप्रदायिक तथा सद्यःफल देने वाली है।

भगवान बुद्ध की शिक्षा और उनका धर्म

बुद्ध ने इस पथ के निम्नलिखित गुण बताये हैं -- यह सरल है, अच्छी तरह समझ में आने योग्य है, बिना किसी दिमागी उलझन के कोई भी इसका अभ्यास कर सकता है। इस पर उठाया गया एक-एक कदम वर्तमान क्षण की सच्चाई पर आधारित है। इसमें कोई कल्पना नहीं, कोई अटकलबाजी नहीं, व्यर्थ का चिंतन नहीं, कोई आत्मसुझाव या बाह्यसुझाव

नहीं। हर कदम यहीं इसी जीवन में अच्छा परिणाम देता है। पथ पर किया गया कोई भी प्रयास व्यर्थ नहीं जाता। शिक्षा इस बात पर बल देती है कि आओ और स्वयं देखो, सच्चाई का स्वयं अनुभव करो। पथ बिल्कुल सीधा (ऋजु) है, इस पर उठाया गया एक-एक कदम हमें दुःख मुक्ति के अंतिम लक्ष्य निर्वाण के निकट ले जाता है। हर समुदाय के हर समझदार व्यक्ति के लिए स्वानुभव से सत्य का साक्षात्कार करने के लिए है।

जब कोई इस पथ पर चलते हुए बुद्ध की बातों को पढ़ता है, तब यह बात स्पष्ट से स्पष्टतर हो जाती है कि इस शिक्षा का उद्देश्य एक धार्मिक संप्रदाय से दूसरे धार्मिक संप्रदाय में लोगों को धर्मांतरित करना नहीं है। वस्तुतः इस शिक्षा का धार्मिक संप्रदायों से कोई लेना-देना नहीं है। इसका अभ्यास सभी कर सकते हैं।

जब कोई बुद्ध का साहित्य पढ़ता है या उस पर लिखी गयी अट्ठकथा और टीका पढ़ता है तो उसे यह जान कर आश्चर्य होता है कि इस पूरे वाङ्मय में 'बौद्ध' या 'बौद्धधर्म' जैसे शब्द बिल्कुल नहीं पाये जाते। बुद्ध ने इन शब्दों का प्रयोग ही नहीं किया। कई शताब्दियों तक उनके अनुयायियों ने भी इन शब्दों का प्रयोग नहीं किया। बुद्ध ने अपनी शिक्षा को 'धम्म' कहा, जिसका अर्थ होता है प्रकृति के नियम (ऋत), स्वानुभूतिजन्य सत्य। उन्होंने अपने अनुयायियों को भी 'धम्मी', 'धम्मट्ठो', 'धम्मिको', 'धम्मचारी', 'धम्मविहारी' आदि कहा। आज की भाषाओं में ही 'बुद्धिज्म', 'बुद्धिस्ट' 'बौद्ध' जैसे शब्द पाये जाते हैं, जिनका पर्याय विस्तृत पालि वाङ्मय में कहीं नहीं मिलता।

यदि बुद्ध की शिक्षा के लिए 'बुद्धिज्म' या 'बौद्ध' शब्द का प्रयोग होता है तब यह एक संप्रदाय विशेष तक सीमित हो जाती है। परंतु 'धम्म' तो असीम है – **अप्पमाणो धम्मो**। यह किसी संप्रदाय विशेष या धर्मावलंबियों के लिए नहीं है। 'धर्म' सबके लिए है और हम सभी जानते हैं कि अब यह शब्द इसी अर्थ में चल पड़ा है जो कि प्रयोग करने में सुविधाजनक है। बहुत से लोग जो इस शब्द का प्रयोग करने लगे हैं, वे बखूबी समझते हैं कि इसका प्रयोग सार्वजनीन धम्म या धर्म के लिए ही कर रहे हैं।

हम समझें कि बुद्ध की शिक्षा क्या है। यह **'आर्य अष्टांगिक मार्ग'** है। इस मार्ग को 'आर्य' इसलिए कहा जाता है कि परिश्रमपूर्वक इस पर जो चलता है वह आर्य हो जाता है, संत हो जाता है, शुद्ध चित्त वाला व्यक्ति हो जाता है। आर्य अष्टांगिक मार्ग के तीन भाग हैं –

प्रथम शील है, जिसको संक्षेप में निम्नलिखित रूप में कहा सकते हैं – सभी पाप कर्मों अर्थात सभी कायिक और वाचिक अकुशल कर्मों से दूर रहना, जिनसे दूसरे को चोट पहुँचती है तथा उनकी शांति और समता भंग होती है। **दूसरा** समाधि अर्थात कुशलचित्त की एकाग्रता है। इसको संक्षेप में निम्नलिखित रूप में कहा सकते हैं – कुशलचित्त की एकाग्रता से कुशल कर्म करो। **तीसरा** पञ्ञा (प्रज्ञा) है, जिसको संक्षेप में निम्नलिखित रूप में कहा सकते हैं – प्रज्ञा विकसित करके प्रज्ञा की भावना परिपूर्ण करके चित्त को विशुद्ध करना। ये तीनों शिक्षाएं अतीत के सभी बुद्धों की शिक्षाएं हैं और भविष्य के सभी बुद्धों की शिक्षाएं होंगी।

बुद्ध की व्यावहारिक शिक्षा

हर अच्छा धर्म शील-सदाचार का जीवन जीने की शिक्षा देता है। यही आध्यात्मिक शिक्षा का सार है, मर्म है। लेकिन बुद्ध का उद्देश्य केवल नैतिक जीवन जीने का उपदेश देना भर नहीं था। उन्होंने आर्य अष्टांगिक मार्ग के दूसरे मील के पत्थर 'समाधि' का अभ्यास करना सिखाया, जिसके लिए किसी आलंबन की आवश्यकता होती है। बहुत से आलंबन हैं जिनसे कोई अपने मन को नियंत्रित कर सकता है, जिन पर कोई अपने मन को टिका सकता है। बुद्ध ने भी बहुत से आलंबन दिये। एक लोकप्रिय आलंबन जो उन्होंने दिया वह है अपना ही श्वास-प्रश्वास। इसको उन्होंने **आनापानसति** (आनापान स्मृति) कहा – जिसका अर्थ है श्वास तथा प्रश्वास के प्रति जागरूकता विकसित करना। सभी मनुष्यों में चाहे वे किसी भी संप्रदाय के हों, सांस का आना-जाना होता ही रहता है। कोई भी श्वास-प्रश्वास के प्रति जागरूकता का अभ्यास करने में आपत्ति नहीं कर सकता। कोई कैसे कह सकता है कि यह सांस मुस्लिम है या हिन्दू है, इसाई है कि यहूदी, बौद्ध है कि जैन, सिक्ख है कि पारसी, कोकेसियन है कि अफ्रीकन कि एशियन, पुरुष है या स्त्री?

'आनापानसति' का अर्थ है कि नाक के नीचे और ऊपर वाले होठ के ऊपर वाले क्षेत्र से होकर जो सांस आ-जा रही है, उसके प्रति जागरूक रहते हुए ऊपर वाले होठ के बीच में एक बिन्दु पर मन को एकाग्र करना।

जैसे-जैसे मन इस छोटे से क्षेत्र पर एकाग्र होता है वह अधिक सूक्ष्म से सूक्ष्मतर और अधिकाधिक संवेदनशील होता जाता है। मात्र तीन दिनों के अभ्यास के बाद, साधक शरीर के इस हिस्से में शारीरिक संवेदनाओं को अनुभव करने लगता है। तत्पश्चात वह प्रज्ञा को विकसित करने पर ध्यान देता है। सिर से लेकर पांव तक सारे शरीर में संवेदनाओं को देखते हुए साधक अनुभव करता है कि सभी संवेदनाएं नाम और रूप से पूर्णतया जुड़ी हुई हैं। नाम और रूप दोनों एक दूसरे को प्रभावित करते हैं। ये दोनों एक ही सिक्के के दो पहलू हैं। इनसे प्रभावित संवेदनाओं के निरीक्षण से यह स्पष्ट हो जाता है कि जब कभी कोई व्यक्ति अकुशल कर्म करता है, तब करने के पहले मन में उसे कोई न कोई विकार जगाना पड़ता है। हत्या करने के पहले उसे भयंकर द्वेष उत्पन्न करना होता है। चोरी करने के पहले लोभ जगाना पड़ता है। यौन दुराचार करने के पहले उसे खूब कामवासना जगानी पड़ती है। किसी दूसरे की हानि करने से पहले व्यक्ति स्वयं अपनी हानि करता है। क्रोध, लोभ, द्वेष, ईर्ष्या, घमंड और भय आदि विकृतियां मनुष्य को तत्काल दुःखी, अभागा, दयनीय और उग्र बनाती हैं। वह अशांत हो जाता है और जब वह अशांत होता है तो अपनी अशांति को अपने तक सीमित नहीं रखता, बल्कि दूसरों को भी अशांत बनाता है, समाज के दूसरे लोगों की हानि करना शुरू करता है। प्रकृति के इस नियम को कोई अपनी इस साढ़े तीन हाथ की काया में स्वयं अनुभव कर सकता है।

अकुशल कर्म करते समय बाहर से कोई सुखी मालूम पड़ सकता है, लेकिन उसकी वास्तविक स्थिति उस अंगारे की तरह है जो ऊपर की राख से ढँका होता है। मानसिक विकारों के चलते वह अंदर ही अंदर जलता रहता है और फिर भी इसका उसे होश नहीं रहता कि अंदर में क्या हो रहा है? इसी को अविद्या (अविज्जा) तथा मोह कहते हैं। *बुद्ध के अनुसार किसी दार्शनिक मान्यता का ज्ञान न होना अविद्या नहीं है। उसके अंदर क्या हो रहा है – इसको न जानना ही अविद्या है।* इस अविद्या रूपी आवरण के कारण ही वह नहीं जान पाता कि वह दुःखी क्यों है। कोई दुःखी रहना नहीं चाहता, लेकिन फिर भी वह तृष्णा अर्थात राग और द्वेष को निरंतर उत्पन्न करते रहने के कारण दुःखी बना रहता है। क्योंकि हर समय वह संवेदनाओं के प्रति प्रतिक्रिया करता रहता है। जैसे-जैसे अविद्या दूर होती है और वह अंदर झांक कर देखने लगता है तब अनुभव करता है कि देखो, मैं इन संवेदनाओं के प्रति प्रतिक्रिया करके ही अपने लिए दुःख जगा रहा हूं। जब ये संवेदनाएं सुखद होती हैं, मैं राग जगाता हूं, और जब ये दुःखद होती हैं तो द्वेष जगाता हूं। दोनों ही मुझे दुःखी बनाती हैं। और अब देखो, इसका मुझे समाधान मिल गया। जब मैं संवेदनाओं के अनित्य स्वभाव को समझ कर तटस्थ रहता हूं, उन्हें साक्षीभाव से देखता हूं अर्थात प्रतिक्रिया नहीं करता तब मुझमें तृष्णा नहीं जागती, न राग जगता है न द्वेष। मन का पुराना स्वभाव (विहैवियर पैटर्न) बदलने लगता है और मैं दुःखचक्र से बाहर निकलने लगता हूं।

बुद्ध के अनुसार यही विद्या (विज्जा) है, यही प्रज्ञा है। इसका किसी दार्शनिक या सांप्रदायिक विचारधारा से कोई लेना-देना नहीं है, कहीं दूर-परे का भी संबंध नहीं है। अपने सुख-दुःख से संबंधित इस सच्चाई को अष्टांगिक मार्ग पर चल कर विपश्यना करते हुए साधक स्वयं अपने अंदर अनुभव कर सकता है। चार आर्य सत्य मात्र दार्शनिक सिद्धांत नहीं हैं। ये तो अपने बारे में वास्तविक यथार्थ हैं जिन्हें साधक अपने अंदर अनुभव करने लगते हैं। *आर्य सत्य वस्तुतः आर्य सत्य तभी होता है जब कोई उसे अपने अंदर अनुभव करते हुए आर्य बनने लगता है।*

जब साधक संवेदनाओं के साथ काम करता है तब वह मन की गहराई में काम करता है। साधक देखता है मन में जब भी कोई विचार उठता है, शरीर पर तत्काल उसके अनुरूप संवेदना होती है। यही बुद्ध का अत्यंत महत्त्वपूर्ण आविष्कार था।

बुद्ध का दूसरा बड़ा आविष्कार यह था कि हम इन संवेदनाओं के प्रति राग या द्वेष पैदा करते हैं। बुद्ध के पहले, उनके समय में तथा उनके बाद भी दूसरे आचार्य इस बात को नहीं जानते थे। वे लोगों को यही सलाह देते रहे कि छः इंद्रियों के द्वारों पर जो ऐंद्रिय विषय आलंबन के रूप में आते

हैं उनके प्रति प्रतिक्रिया न करो अर्थात आंखें जब रूप देखें, नाक जब गंध सूंघे और कान जब शब्द सुनें तब प्रतिक्रिया नहीं करनी चाहिए। वे लोग सिखाते थे कि जब ऐंद्रिय वस्तुएं भिन्न-भिन्न इंद्रियों के संपर्क में आती हैं तब उन्हें अच्छा या बुरा मान कर राग या द्वेष की प्रतिक्रिया मत करो। ऐसे उपदेश अस्तित्व में थे। लेकिन बुद्ध ने कहा कि वस्तुतः तुम इन आलंबनों के प्रति प्रतिक्रिया नहीं कर रहे हो। उन्होंने काले सांड़ तथा उजले सांड़ का उदाहरण दे कर समझाया कि इनमें से एक प्रतीक है इंद्रिय द्वारों का और दूसरा इंद्रिय विषयों का। दोनों ही रस्सी से बँधे हैं। न तो काला सांड़ बंधन है और न ही उजला सांड़, बंधन तो रस्सी का है। बुद्ध ने कहा कि राग *(तृष्णा) की रस्सी बंधन है और व्यक्ति संवेदनाओं के प्रति प्रतिक्रिया कर के ही राग और द्वेष को जन्म देता है। यह सम्यक सम्बुद्ध की बहुत बड़ी खोज थी, महान आविष्कार था। इसी खोज के कारण वे सम्यक सम्बुद्ध बने।*

दूसरे बहुत से लोग थे जो कहते थे कि ऐंद्रिय वस्तुओं (आलंबनों) के प्रति प्रतिक्रिया नहीं करनी चाहिए। फिर भी वे 'बुद्ध' नहीं बन सके। कुछ आचार्य ऐसे थे जो यह सिखाते थे कि किसी को राग और द्वेष नहीं जगाना चाहिए। बुद्ध ने कहा कि राग और द्वेष तब तक रहेगा जब तक मोह है। इसीलिए उन्होंने मोह से बाहर निकलने की विधि सिखायी। मोह है क्या? मोह अविज्जा (अविद्या) है। आप जानते नहीं कि अंदर क्या हो रहा है। आप लोभ (राग) और द्वेष के असली कारण को नहीं जानते। आप पृथक्जन हैं, अज्ञानी हैं, अनभिज्ञ हैं। आप इससे बाहर कैसे आ सकेंगे? समस्या की जड़ पर प्रहार करो और संवेदनाओं के साथ काम करते हुए दुःख से बाहर आओ। जब तक आप संवेदनाओं के प्रति जागरूक नहीं हैं, तब तक आप को उनका होश नहीं है, आप बाह्य वस्तुओं के साथ झगड़ते रहे –यह सोच कर कि यह कुरूप है, यह कुरूप नहीं है। आप केवल ऊपरी धरातल पर काम करते रहे। आप सोचते हैं कि काला सांड़ बंधन का कारण है या सफेद सांड़ ही बंधन है। बंधन तो राग और द्वेष है, जो स्वयं संवेदनाओं के प्रति प्रतिक्रिया करके उत्पन्न करता है। एक शराबी सोचता है कि उसको शराब की लत है, लेकिन वस्तुतः उसको लत है उन संवेदनाओं की, जिसे वह शराब पीते समय अनुभव करता है।

जब कोई तटस्थ भाव से संवेदनाओं को देखता है, तब वह अज्ञानता से, बेहोशी से बाहर निकलने लगता है। संवेदनाओं की अनित्यता का ज्ञान जगा कर, प्रतिक्रिया न करते हुए प्रज्ञा पुष्ट करता है। यह प्रकृति का नियम है। सांवृतिक सत्य के स्वाभाविक क्रम के पीछे धर्म नियामता का नियम है। बुद्ध रहें या न रहें धर्म नियामता रहती है। यह नियम शाश्वत है। यह एक महान वैज्ञानिक की सुस्पष्ट उद्घोषणा है।

बुद्ध कहते हैं –मैंने प्रकृति के इस 'प्रतीत्य-समुत्पाद' नियम को अपने भीतर अनुभव किया है। स्वयं अनुभव कर के पूरी तरह समझने के बाद ही मैं इसकी उद्घोषणा करता हूं, इसका उपदेश करता हूं, इसे स्पष्ट करता हूं, इसे प्रतिष्ठापित, करता हूं। इसे स्वयं पूरी तरह समझने के बाद ही मैं दूसरे को बताता हूं, कहता हूं। यह ठीक उसी प्रकार है जैसे –न्यूटन रहें या न रहें, गुरुत्वाकर्षण का नियम सत्य है। न्यूटन ने इसका आविष्कार कर के पूरी दुनिया को बताया। वैसे ही गेलेलियो रहें या न रहें, उनका यह आविष्कार कि पृथ्वी सूर्य के चारों ओर घूमती है, सत्य ही रहता है।

संवेदना का अनुभव जहां होता है वह एक निर्णायक जंक्शन (संधिस्थान) है जहां से कोई एक-दूसरे के विपरीत जाने वाले दो रास्तों पर चल सकता है। यदि कोई अज्ञानता में सुखद और दुःखद संवेदनाओं के प्रति प्रतिक्रिया करता रहता है तब वह अपने दुःख को कई गुना बढ़ा लेता है। और जब सुखद एवं दुःखद संवेदनाओं के प्रति तटस्थ रहना सीख लेता है तब वह मन की गहराईयों तक जा कर अपने स्वभाव-शिकंजे को बदलने लगता है और दुःख से बाहर निकलने लगता है। संवेदनाएं ही मूल हैं, जड़ हैं। जब तक कोई मूल की, जड़ों की उपेक्षा करता रहता है, तब तक विषवृक्ष बढ़ेगा ही, चाहे उसके धड़ को, टहनियों को, पत्तियों आदि को क्यों न काटते रहें। बुद्ध ने कहा –जैसे कोई वृक्ष जिसकी जड़ें सही सलामत हों, काट दिये जाने पर भी फिर अंकुरित हो, विकसित होने लगता है उसी तरह जब तक भीतर के राग समूल नष्ट नहीं होते, दुःख बार-बार उत्पन्न होता ही रहता है।

इस प्रकार इस महान वैज्ञानिक ने यह आविष्कार किया कि मानसिक विकारों से पूरी तरह मुक्त होने के लिए किसी को मन की जड़ तक जा कर काम करना होगा। हर व्यक्ति को जड़ें काटनी ही होंगी, मूल का उच्छेद करना ही होगा।

अच्छे के लिए समाज में सुधार हो, इसके लिए हर एक व्यक्ति को सुधरना होगा। जब पूरा जंगल ही मुरझा गया हो तब हर वृक्ष का परिपोषण करना होगा, उनकी जड़ों को रोगमुक्त करना होगा और पानी से सींचना होगा। तब पूरा जंगल हरा-भरा हो उठेगा, खिल जायगा। उसी तरह समाज को सुधारने के लिए हर व्यक्ति को शांत होना होगा। व्यक्ति ही समाज-सुधार की कुंजी है। हम चाहते हैं कि पूरे विश्व में शांति हो तो इसके लिए हर देश और हर समाज को शांत होना होगा। यहां मैं फिर बुद्ध के एक महत्त्वपूर्ण उपदेश का उदाहरण देना चाहूंगा जिसे उन्होंने लिच्छवी के वज्जी गणतंत्र को दिया था। बुद्ध ने निम्नलिखित व्यावहारिक शिक्षा दी, जिसने लिच्छवियों को अपराजेय बनाया।

१. जब तक वे लोग बैठक करते रहेंगे और नियत समय पर मिलते रहेंगे, वे अजेय रहेंगे। **२.** जब तक वे लोग एक रह कर मिलेंगे, एक रह कर उठेंगे और एक रह कर कर्तव्य-पालन करेंगे, वे अजेय रहेंगे। **३.** जब तक वे लोग अच्छे प्रशासन की प्राचीन नीतियों और अपनी न्याय-प्रणाली का अतिक्रमण नहीं करेंगे, वे अजेय रहेंगे। **४.** जब तक वे बूढ़ों का आदर सम्मान करेंगे, इज्जत करेंगे, उन पर श्रद्धा रख कर उनकी बातों को मानेंगे, वे अजेय रहेंगे। **५.** जब तक वे लोग अपनी स्त्रियों और बच्चों की रक्षा करेंगे, वे अजेय रहेंगे। **६.** जब तक वे अपने गणतंत्र के अंदर और बाहर के पूजा स्थलों की तथा पूजनीय की पूजा करेंगे, उपासना करेंगे और आर्थिक सहायता से उनकी रक्षा करेंगे वे अजेय रहेंगे। **७.** जब तक वे लोग अर्हतों की अच्छी प्रकार रक्षा करते रहेंगे वे अजेय रहेंगे।

उन दिनों भी बहुत सारे संप्रदाय (पंथ, मत) थे जिनके अपने-अपने मंदिर और पूजा स्थल थे। बुद्धिमानी इसी बात में है कि उन सबों को खुश और संतुष्ट रखा जाय। किसी को तंग न किया जाय। तंग करने से ही लोग राष्ट्र (राज्य) का शत्रु हो जाने के लिए बाध्य होते हैं। उन लोगों के पूजा स्थलों को समुचित संरक्षण मिलना चाहिए। जब तक शासक सत्पुरुषों को संरक्षण देंगे और उनका पालन पोषण करेंगे, वे अजेय रहेंगे।

बुद्ध की यह विवेक पूर्ण शिक्षा विश्व में शांति और सामंजस्य स्थापित करने के लिए आज भी उतनी ही उपयोगी है। यदि हम विश्व में सचमुच शांति लाना चाहते हैं तब धर्मसंबंधी समस्याओं की उपेक्षा नहीं कर सकते।

प्रत्येक सरकार का यह कर्तव्य होता है कि वह बाहरी आक्रमणों से अपने लोगों की रक्षा करे। अपने क्षेत्र (राज्य) और लोगों की सुरक्षा के लिए हर संभव प्रयत्न करे। ऐसा करते हुए यह बात अवश्य ध्यान में रखी जानी चाहिए कि ऐसी कार्यवाही समस्या का स्थाई समाधान नहीं है। सब के प्रति सद्भाव और करुणा ही विद्वेष को जड़ से दूर करने में सक्षम है जो किसी भी मत के मानने वाले व्यक्ति द्वारा किये जाने वाले कार्यों के मूल में समाई

महत्त्वपूर्ण सूचनाः (जिसने मासिक पत्रिका का शुल्क जमा नहीं किया है उसी के लिए केवल)

भावी शिविर-कार्यक्रमों की जानकारी और दैनिक साधना में प्रगति के लिए प्रेरणास्रोत 'विपश्यना' पत्रिका सभी नये साधकों को कुछ समय तक विशेष सुविधा के रूप में प्रेषित की जाती है। यदि आप चाहते हों कि यह आप को २००३ में नियमित मिलती रहे तो कृपया इस भाग को काट कर पीछे चिपकाए पते सहित हमें लौटती डाक से वापस भिजवाएं। आप की ओर से कोई उत्तर न आने पर 'विपश्यना' के प्रति आप की अरुचि मान कर पत्रिका भेजना बंद कर देंगे। परंतु यदि आप 'विपश्यना' के प्रति रुचिवान हैं और किसी कारणवश शुल्क नहीं भेज सकते हों तब भी हम पत्रिका भेजते रहेंगे। आप चाहें तो आवश्यक शुल्क भेज कर इसके आजीवन या वार्षिक सदस्य बन सकते हैं। अतः कृपया निम्न अनुकूल बाक्स पर ✓ लगा कर सूचित करें–

❑ चाहिए ❑ अतिरिक्त प्रति/प्रतियां नहीं चाहिए ❑ रु. २५०/- (आजीवन शुल्क) या ❑ रु. २०/- (वार्षिक शुल्क) भेज रहे हैं।

हुई है। भारत तथा संयुक्त राष्ट्र अमेरिका सहित विश्व की विभिन्न जेलों में होने वाले विपश्यना शिविरों में हम देखते हैं कि लोगों में कैसे बदलाव आता है। आतंकवाद का मूल आतंकवादियों के मन में हैं। हम लोगों ने देखा है कि उनमें से कुछ कैसे बदल गये हैं, उनमें अविश्वसनीय सुधार हुआ है। क्रोध, भय, बदला लेने की भावना और घृणा द्रवीभूत हो कर विलीन हो जाती है और उनका स्थान लेती है शांति और करुणा।सर्वप्रथम हम जेल के कुछ अधिकारियों को विपश्यना सीखने के लिए कहते हैं और उसके बाद ही वहां के कैदियों के लिए शिविर लगाते हैं। इसका आश्चर्यजनक परिणाम होता है।

बुद्ध की शिक्षा में हम एक ऐसा सेतु पाते हैं जो विभिन्न मतों और पंथों को जोड़ सकता है। बुद्ध की शिक्षा के तीन मौलिक भाग – शील, समाधि और प्रज्ञा सभी धर्मों और आध्यात्मिक पंथों का सार है। शील, समाधि और प्रज्ञा सभी धर्मों में सर्वनिष्ठ है। लाभप्रद जीवन जीने के लिए जो तीन मूलभूत बातें आवश्यक हैं उनके बारे में कोई झगड़ा हो ही नहीं सकता। बुद्ध की शिक्षा इन्हीं तीनों के अभ्यास पर जोर देती है ताकि जीवन में इसका उपयोग किया जा सके ।यही तो हर धर्म का हृदय है, मर्म है। इस मर्म को महत्त्व न देकर हम बाहरी छिलकों को लेकर झगड़ते रहते हैं और बाहरी छिलके जैसे कर्म-कांड या अनुष्ठान तो हर धर्म के अलग-अलग हो ही सकते हैं।

इतिहास साक्षी है कि भगवान बुद्ध की यह सार्वजनीन तथा असांप्रदायिक शिक्षा जब किसी भी स्थान पर या किसी भी समुदाय के बीच गयी, वहां की स्थानीय संस्कृति और समुदाय से इसका कभी संघर्ष नहीं हुआ। बल्कि यह वहां इस प्रकार घुलमिल गयी जैसे कि दूध में शक्कर घुल जाती है। बुद्ध की शिक्षा धीरे-धीरे समाज की अभिवृद्धि तथा उसे मृदु और मधुर बनाने के लिए आत्मसात कर ली गयी। हम सभी जानते हैं कि आज की कड़वाहटभरी दुनिया को शांति और सद्भाव के मिठास की कितनी आवश्यकता है। सम्यक संबुद्ध की शिक्षा अधिक से अधिक लोगों के जीवन में शांति और सुख लाये और दुनिया के विभिन्न समाज के अधिक से अधिक लोग सुखमय तथा शांतिमय जीवन बिता सकें –यही मंगल कामना है।

भवतु सब्ब मंगलं! सभी प्राणी सुखी हों! सब की स्वस्ति मुक्ति हो!

दोहे धर्म के

अब तक निज परिवार ही, बना रहा संसार।
अब सारा संसार ही, बन जावे परिवार॥

नहीं हमारे हाथ से, बुरा किसी का होय।
दो दिन की यह जिंदगी, लड़ने में ना खोंय॥

नहीं किसी का शांति सुख, मुझसे खंडित होय।
भला हो सके तो भला, बुरा न किंचित होय॥

इस दुखियारे जगत का, दुखवर्धन ना होय।
मुझसे जितना हो सके, सुख संवर्धन होय॥

मेरे मत की मान्यता, मुझको प्रिय ही होय।
पर सुन कर विपरीत मति, चित व्याकुल ना होय॥

ज्यों गौतम सिद्धार्थ में, जागी बोधि अनंत।
त्यों हम सब में भी जगे, होय दुखों का अंत॥

मेसर्स मोतीलाल बनारसीदास
११-१३, सनस प्लाजा, १३०२ बाजीराव रोड,
पूणे-४११००२, फोन: ४४८-६१९०
महालक्ष्मी मंदिर लेन, २२ भूलाभाई देसाई रोड,
मुम्बई-४०००२६, फोन: ४९२-३५२६
की मंगल कामनाओं सहित

दूहा धरम रा

संप्रदाय रो संखियो, जात-पांत रो ज्हैर।
सेवन करतो ही रह्यो, कठै खेम, सुख, चैन?

धरम न हिंदू बौद्ध है, सिक्ख न मुसलिम जैन।
धरम जग्यां दिवळो जगै, आंधो पावै नैन॥

मंगलमयी विपस्सना, विधि दीनी भगवान।
प्रतिदिन रै अभ्यास स्यूं, साधै निज कल्याण॥

घोर द्रोह स्यूं, द्वेस स्यूं, रह्यो हियो अकुळाय।
धन! विपस्सना साधना, निरमल दियो बणाय॥

काळी छाया पाप री, जन मन लीन्यो घेर।
उगसी किरणां धरम री, होसी दूर अँधेर॥

जन जन मँह जागै धरम, लोग हुवै निस्पाप।
जन जन रा दुखड़ा मिटै, मिटै सोक संताप॥

मेसर्स गो गो गारमेंट्स
३१ –४२, भांगवाड़ी शॉपिंग आर्केड,
१ला माला, कालबादेवी रोड, मुंबई - ४००००२.
फोन: ०२२- २०५०४१४
की मंगल कामनाओं सहित

'विपश्यना विशोधन विन्यास' के लिए प्रकाशक, मुद्रक एवं संपादक: राम प्रताप यादव, धम्मगिरि, इगतपुरी-४२२४०३, दूरभाष : (०२५५३) ४४०८६, ४४०७६.
मुद्रण स्थान : अक्षर चित्र प्रिंटिंग प्रेस, ६९- बी रोड, सातपुर, नाशिक-४२२००७. **बुद्धवर्ष २५४६,** **माघ पूर्णिमा**, १६ फरवरी, २००३

वार्षिक शुल्क रु. २०/-, विदेश में US $ 10, **आजीवन शुल्क** रु. २५०/-, " US $ 100. **'विपश्यना' रजि. नं. १९१५६/७१.** Regn. No. AR/NSK-46/2003

Licenced to post w**ithout Prepayment of postage** -- Licence number-- **AR/NSK-WP/3**
Posting day- Purnima of Every Month, Posted at **Igatpuri-422403,** Dist. Nashik (M.S.)

If not delivered please return to:-

विपश्यना विशोधन विन्यास
धम्मगिरि, इगतपुरी - ४२२४०३
जिला-नाशिक, महाराष्ट्र, भारत
दूरभाष : (०२५५३) ४४०७६
फैक्स : (०२५५३) ४४१७६
Website: www.vri.dhamma.org
e-mail: dhamma@vsnl.com